शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 फरवरी-मार्च 2026
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

गढ़वाली भाषा एवं साहित्य : परिचयात्मक अध्ययन

डॉ. अमिता प्रकाश
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सोमेश्वर, अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

शोध संक्षेप

प्रस्तुत शोध आलेख गढ़वाली भाषा एवं साहित्य के उद्भव, विकास तथा उसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा का विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। मातृभाषा को मानव संवेदना सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक चेतना की मूल इकाई मानते हुए यह अध्ययन भाषा उपभाषा, बोली के विवाद से ऊपर उठकर गढ़वाली को एक स्वतंत्र, समर्थ और समृद्ध भाषा के रूप में स्थापित करता है। पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया(2010) तथा जॉर्ज ग्रियर्सन के लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया जैसे महत्त्वपूर्ण भाषा सर्वेक्षणों के आलोक में गढ़वाली की भाषिक स्थिति का विवेचन किया गया है।

शोध में गढ़वाली भाषा की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न विद्वानों : सुनीति कुमार चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा, उदय नारायण तिवारी, शिव प्रसाद डबराल, केशव दत्त रुवाली, भजन सिंह आदि के मतों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। गढ़वाली साहित्य के विकास को मौखिक परंपरा, अभिलेखीय साहित्य, भक्तिकालीन, रीतिकालीन, छायावादी, द्विवेदीयुगीन तथा आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों के संदर्भ में रेखांकित किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि गढ़वाली भाषा एवं साहित्य भारतीय भाषिक-सांस्कृतिक परंपरा का एक सशक्त और जीवंत अंग है जिसके संरक्षण, संवर्धन और अकादमिक मान्यता की आज अत्यंत आवश्यकता है।

बीज शब्द : *गढ़वाली भाषा, गढ़वाली साहित्य, मातृभाषा, मध्य हिमालयी भाषाएँ, खस, प्राकृत, लोक साहित्य, जागर, पवाड़े, हिन्दी साहित्य का प्रभाव*

प्रस्तावना

मातृभाषा कहते ही हृदय के तार झंकृत होने लगते हैं। इस शब्द में इतनी कोमलता, इतनी संवेदनाएं, इतना ममत्व भरा है कि कैसा भी निष्ठुर, संवेदनशून्य व्यक्ति हो वह तरंगित हो ही जाता है। मातृभाषा दिवस के बहाने यह एक शुभ अवसर नई शिक्षा नीति ने हमें दिया है कि मातृभाषा के प्रति हम अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करें, बिना इस विवाद में उलझे कि कौन भाषा है ? कौन उपभाषा है ? या कौन बोली है ?

जहां तक मेरी समझ है, मैं मानती हूं कि हर वह वाणी जो हमारे विचारों को भाषित करने में सक्षम है भाषा कही जानी चाहिए। चाहे वह सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त हो, चाहे उसकी लिपि हो या न हो, चाहे उसे संवैधानिक संरक्षण मिला हो या ना मिला हो। मातृभाषा मानव जीवन की प्रथम और सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। यह न केवल संप्रेषण का साधन है, बल्कि व्यक्ति की संवेदनाओं, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक चेतना और ऐतिहासिक स्मृति की वाहक भी होती है। किसी समाज की

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 फरवरी-मार्च 2026
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भाषा उसके सामूहिक अनुभवों, लोकविश्वासों, परंपराओं और जीवन-दृष्टि को सुरक्षित रखती है। वर्तमान में नई शिक्षा नीति द्वारा मातृभाषाओं पर दिए गए बल ने भारतीय भाषाओं के अध्ययन को नई दिशा प्रदान की है। इस संदर्भ में गढ़वाली भाषा का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है, जो उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में प्रचलित एक प्रमुख हिमालयी भाषा है। दुर्भाग्यवश गढ़वाली जैसी समृद्ध भाषाएँ लंबे समय तक 'बोली' या 'उपभाषा' के विवाद में उलझाकर हाशिए पर रखी गईं। यह शोध आलेख गढ़वाली भाषा एवं साहित्य को एक स्वतंत्र, समृद्ध और ऐतिहासिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है।

गढ़वाली भाषा की भाषिक स्थिति

पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (PLSI, 2010) ने भाषा की परिभाषा को संकीर्ण दायरे से निकालकर एक व्यापक दृष्टि प्रदान की। इस सर्वेक्षण के अनुसार वह प्रत्येक वाणी जो विचारों और भावों की अभिव्यक्ति में सक्षम है, भाषा कही जा सकती है। इसी आधार पर भारत में लगभग 850 भाषाओं को सूचीबद्ध किया गया। इस सर्वेक्षण के 30वें खंड में उत्तराखंड की 13 भाषाओं को सम्मिलित किया गया है, जिनमें गढ़वाली, कुमाऊनी और जौनसारी प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जाड़, जोहारी, बंगाणी, मार्छा, थारू, बुक्सा, राजि आदि भाषाएँ भी सम्मिलित हैं। इनमें से राजि भाषा अत्यंत सीमित भाषियों के कारण विलुप्ति के कगार पर है।

गढ़वाली भाषाय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

किसी भी भाषा के अतीत को जानने के लिए उस भाषा भाषी समाज के बारे में मूलभूत जानकारी होना आवश्यक है। आर्यों के आगमन से पूर्व कोल, किरात, पुलिंद तंगण, खश जातियों का निवास स्थान मध्य हिमालय रहा है। डॉ.चातक एवं भजन सिंह 'सिंह' द्रविड़ जातियों का निवास स्थान भी इस क्षेत्र को मानते हैं और इसके समर्थन में वह द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाओं के विभिन्न शब्दों के प्रयोग को आधार मानते हैं। महाभारत के वन पर्व में यहां की किरात, तंगण व पुलिंद जातियों का उल्लेख मिलता है। किरात से पूर्व यहां कोल जाति निवास करती थी, जिसे किरातों ने बीहड़ की ओर धकेल दिया। मध्य हिमालय के इस भूभाग को उत्तराखंड के नाम से जाना जाता है, जिसके अंतर्गत दो मंडल हैं गढ़वाल तथा कुमाऊं। गढ़वाल की भाषा को मुख्यतः गढ़वाली कहा जाता है। गढ़वाली भाषा के मूल स्रोत या उत्पत्ति पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं, डॉ.सुनीति कुमार चटर्जी गढ़वाली को दरद खस से उद्भूत मानते हैं डॉ.चाटुर्ज्या पहाड़ी भाषाओं को अपने भौगोलिक वर्गीकरण उदीच्या, प्रतीच्या, मध्य देशीय, दक्षिणात्या आदि में मध्य पहाड़ी को कहीं स्थान नहीं देते। केवल अलग से उनका मूल दरद, पैशाची या खश बताते हुए उसे राजस्थानी की एक शाखा बताकर इतिश्री कर देते हैं।"[1] उनका मानना है कि मध्य पहाड़ी या हिमालयी भाषा मूलतः दरद-खस प्राकृत है जो मध्यकाल में राजस्थानी और अपभ्रंश से प्रभावित हुई। डॉधीरेंद्र वर्मा, उदय नारायण तिवारी तथा डॉ.गोविंद चातक गढ़वाली का उद्भव शौरसैनी अपभ्रंश से मानते हैं। इस संबंध में डॉ.शिव प्रसाद डबराल एवं केशव दत्त रुवाली जी का मत विशेष उल्लेखनीय है। इन दोनों ही विद्वानों ने गढ़वाली-कुमाऊनी के मूल में खस-प्राकृत को मानते हुए कहा है कि हिंदी के अतिशय प्रभाव के कारण यह शौरसैनी से उद्भूत प्रतीत होती है।"[2] भजन सिंह 'सिंह', गुणानंद

जुयाल और हरिराम धस्माना जैसे विद्वानों का मानना है कि गढ़वाली का विकास अन्य भारतीय भाषाओं की भांति वैदिक संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की परंपरा में हुआ है। इस कथन के पीछे उन्होंने कई वैदिक शब्दों का उल्लेख किया है।

अस्तु, हम कह सकते हैं कि किरात मंडल से खस मंडल और खस मंडल से केदारखंड की इस भूमि को लगभग 16वीं सदी के प्रारंभ में गढ़वाल नाम से अभिहित किया गया, जब राजा अजय पाल ने छोटे-छोटे गढ़ों का एकीकरण एक राजनीतिक इकाई के रूप में किया। पातीराम जी के शब्दों मेंए गढ़पाल शब्द से इस क्षेत्र का नाम गढ़वाल पड़ा।"[3] हरिदत्त भट्ट शैलेश गाड़ (छोटी नदियों) से गढ़वाल शब्द की उत्पत्ति मानते हैं जो उचित प्रतीत नहीं होता है। खैर सर्वमान्य सिद्धांत आज यही है कि 52 गढ़ों की भूमि होने के कारण इस क्षेत्र को गढ़वाल कहा गया और गढ़वालवासियों की भाषा को गढ़वाली। गढ़वाली भाषा का जिक्र भारत के प्रथम भाषा सर्वेक्षण में जॉर्ज ग्रियर्सन ने भी किया है। लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया नाम से 21 खंडों में प्रकाशित इस रिपोर्ट में 179 भाषा तथा 544 बोलियों को सम्मिलित करते हुए जॉर्ज ग्रियर्सन ने खंड 9 भाग 4 में गढ़वाली कुमाऊनी को मध्य पहाड़ी के अंतर्गत रखा है। इसी रिपोर्ट में वह गढ़वाली के आठ उपभेद श्रीनगरिया, नागपुरी, दसौल्या, बधाणी, राठी, टिहरयाली तथा मँझकुमैया भी प्रस्तुत करते हैं। गढ़वाली भाषा आज जिस रूप में मिलती है उसके प्रथम प्रमाण 1455 ईस्वी के आसपास पँवार राजा जगतपाल के दानपात्र में मिलती है, भले ही वह गढ़वाली का आरंभिक रूप है जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है किन्तु अजयपाल का देवलगढ़ लेख शुद्ध गढ़वाली में ही है। इसी प्रकार के कई अन्य दानपत्र, ताम्रपत्र अभिलेख विभिन्न राजाओं के समय पर प्राप्त होते हैं, और इन्हीं अभिलेखों के आधार पर विद्वत समाज यह दावा भी करता है कि गढ़वाली तत्कालीन राजाओं की राजभाषा थी।

गढ़वाली साहित्य विकास की परंपरा

गढ़वाली का मध्यकालीन रूप गढ़वाली जागर गीतों, माँगल गीतों तथा रखोली झैण जैसे तंत्र-मंत्रों में दिखाई देता है। मौखिक परंपरा में लंबे समय से बने इस साहित्य पर सिद्धों तथा नाथ संप्रदाय का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इन सभी को 1932 में लिपिबद्ध गया। मौखिक परंपरा के साहित्य तथा दानपत्रों या अभिलेखों में लिखित गढ़वाली से इतर साहित्यिक गढ़वाली के प्रथम दर्शन लगभग 18वीं सदी के मध्य से होने लगते हैं। गढ़वाली की पहली कविता लगभग 1750 में जयदेव बहुगुणा जी द्वारा रचित पक्षी संहार को माना जाता है :

श्रंच जुड़या पंच जुड़या जुड़िगे घिमसाण जी
ट्वट्या बवल्द गरुड़ राजा की बरात माँ मिन भी जाण जी।"[4]

इसी क्रम में ईसाई मिशनरियों का प्रवेश होता है और बाइबिल की न्यू टेस्टामेन्ट का अनुवाद 1820 में गढ़वाली में मिशनरीज द्वारा किया जाता है। 1876 में अमेरिकी मिशनरीज ने गॉस्पल ऑफ मैथ्यू का गढ़वाली में अनुवाद किया। इसी प्रकार सुदर्शन शाह कृत 'सभासार' जो मूलतः बृजभाषा में लिखी गई है उसका भावसार गढ़वाली में दिया गया है। आरंभिक गढ़वाली कवि हर्षपुरी गुसाईं, लीलादत्त कोटनाला तथा हरिकृष्ण दोर्गादत्ति लगभग उसी काल में रचना कर रहे थे। हर्षपुरी गुसाईं महराजपुरी के नाम से भी रचनाएं करते थे। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, प्रेम व शृंगार भक्ति आदि विषयों पर उन्होंने अनेक रचनाएं 'अल्मोड़ा

अखबार' एवं 'कविवचन सुधा' में उनकी रचनाएं प्रकाशित होती थीं। लीलादत्त कोटनाला कृत 'लाट रिपन' भी कवि वचन सुधा में प्रकाशित होने वाली रचना थी। 1909 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन ने गढ़वाली साहित्य के प्रचार-प्रसार में वही भूमिका निभाई जो 'सरस्वती' ने हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में। गढ़वाली काव्य के विकास यात्रा में लगभग वही चरण दृष्टिगत होते हैं। "आरंभ से लेकर आज की गढ़वाली कविता तक गढ़वाली काव्य भिन्न भिन्न काल खंडों में हिन्दी साहित्य से प्रभावित होता रहा है। यह प्रभाव संवेदनात्मक तथा शिल्पगत दोनों तरह से है।"[5]

गढ़वाली लोक साहित्य में रचित पवाड़े हिन्दी साहित्य की वीरकाव्य परंपरा में ही लिखे गए हैं। जिस प्रकार हिन्दी वीरगाथा काव्यों में कवियों ने राजाओं की वंशावलियोंए राजकाज एवं युद्धों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया उसी भांति पवाड़ों तथा भड़ेलो में जगदेव पँवार, गढ़ू सुम्याल, सूरिजनाग, कालू भण्डारी जैसे लोकनायकों की वीरता, निष्ठा, प्रेम बलिदान आदि का लोमहर्षक वर्णन मिलता है।

हिन्दी भक्तिकालीन परंपरा की अनुगूँज गढ़वाली जागरों में स्पष्ट सुनाई देती है। हिन्दी के नाथ-सिद्ध साहित्य के समान ही गढ़वाली तंत्र-मंत्रों एवं साबरी ग्रंथों में अतिमानवीय चमत्कारों का उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही भक्ति साहित्य परंपरा को कृष्णए गंगू रमोला, सृष्टि उत्पत्ति आदि जागरों में आसानी से लक्षित किया जा सकता है। यही नहीं नाथ-सिद्धों तथा कबीर की वाणी का सार भरथरी के गीतों में देखने को मिलता है। मौलाराम, रतन कवि कृत फतेहप्रकाशए स्वामी शशधर तथा बहुत बाद में लीलादत्त कोटनाला की छंदमाला रीति परंपरा में लिखे काव्य हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा अर्थात भारतेन्दु युग के साथ साथ गढ़वाली की वर्तमान काव्य परंपरा का उद्भव होता है और तत्कालीन राजभक्ति युक्त देशभक्ति भावना, सामाजिक चेतना, स्त्री दुर्दशा एवं प्रकृति चित्रण आदि की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र बृजभानु दुलारी के अनन्य भक्त हैं उसी प्रकार का समर्पण भाव हरिकृष्ण दोर्गादत्ति में देखने को मिलता है.

"तुम्हरा चरणों कु भगवती भरोसों धरि रखे
कुई होए कन्नी हो मैं त नि सम्झदू कई सणी।"[6]

द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ जैसे स्वदेशानुराग, प्रकृति चित्रण, सामाजिक चेतना, जातीय उत्थान की भावना, नारी शिक्षा आदि सत्यशरण रतूड़ी की उठा गढ़वालियों, अबला पुकार, रत्नाम्बर दत्त चंदोला की मातृभूमि तथा भजन सिंह 'सिंह' की 'स्वीली समस्या', अंधविश्वास, कन्या-विलाप, हरिजन समस्या, जन्मपत्री, टके का ब्याह जैसी कविताओं में तथा ज्ञानानंद सेमवाल की 'विद्या महिमा', पुनर्विवाह, 'बुढ़या जंवाई', 'नारी धर्म' आदि कविताओं में देखने को मिलती है।

छायावादी वैयक्तिकता, गीतात्मकता, लाक्षणिकता आदि प्रवृत्तियों के दर्शन चक्रधर बहुगुणा के मोछंग छैला, भगवती चरण निर्मोही की हिलास की हिलासी, फ्योंलि कैदी को बसंत, रैबार, गैल्या, कुछौं मैं ? देखने को मिलती है।

"ना हो जोगि ना हो जोगि
कत्योन लगाये ह्वलो जोर
पर गै ह्वलु वो हँसदो-हँसदो
बैराग्य नशा मा झकाजोर।"[7]

छायावादोत्तर नई कविता के प्रभावस्वरूप गढ़वाली में अनेक कविताएं लिखी गईं। यथार्थ

भावों की तीव्रता व्यंग्यात्मकता, असंतोष व अस्वीकृति के स्वर वर्तमान गढ़वाली कविता में स्पष्ट रूप से सुने जा सकते हैं। कन्हैयालाल डंडरियाल, चिन्मय शायर जैसे अबोध बंधु बहुगुणा, नेत्र सिंह असवाल, कुटज भारती, जीत सिंह नेगी, नरेंद्र सिंह नेगी, वीरेंद्र पँवार, हरीश जुयाल आदि की कविताओं में दिखती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 चातक गोविंद मध्य हिमालयी भाषा : सामर्थ्य और संवेदना, तक्षशिला प्रकाशन, 2006, पृष्ठ 12

2 चातक गोविंद मध्य हिमालयी भाषा : सामर्थ्य और संवेदना, तक्षशिला प्रकाशन, 2006 पृष्ठ 23

3 कोटनाला जगदंबा प्रसाद, गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, अक्षर संयोजन एवं मुद्रण देहरादून 2011 पृष्ठ 56

4 कोटनाला जगदंबा प्रसाद, गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, अक्षर संयोजन एवं मुद्रण देहरादून 2011, पृष्ठ 65

5 कोटनाला जगदंबा प्रसाद, गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, अक्षर संयोजन एवं मुद्रण देहरादून 2011

6 गैरोला, तारादत्त, गढ़वाली कवितावली, पृष्ठ 18

7 निर्मोही भगवती चरण, हिलांस, इकतारा, 1948